National Journal of Multidisciplinary Research and Development
www.multidisciplinaryjournal.org
ISSN: 2455-9040
Received: 05-01-2024, Accepted: 21-01-2024, Published: 06-02-2024
Volume 9, Issue 1, 2024, Page No. 24-26

गुलज़ार की कहानियों में भारत विभाजन की त्रासदी

सुकांत सुमन
हिन्दी विभाग, अंबेडकर विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

सारांश
विभाजन की घटना जिससे व्यापक फ़लक पर लोग प्रभावित हुए उसने स्वाभाविक तौर पर साहित्य–लेखन को भी प्रभावित किया। बहुतेरे लेखकों ने विभाजन की इस त्रासदी को प्रत्यक्ष रूप में भोगा है। फलतः उनकी कहानियों में मानवीय भावनाओं की तीव्र अनुभूति देखने को मिलती है। गुलज़ार एक ऐसे ही लेखक हैं जिनके लिए विभाजन, इतिहास की घटना होते हुए भी उनके अवचेतन में एक जीवित संदर्भ की तरह मौजूद है। उनकी कहानियाँ न सिर्फ विभाजन की त्रासदी को संजीदगी से महसूस कराती हैं बल्कि विभाजन की त्रासदी के कारणों की भी पड़ताल करती हैं। उनकी कहानियों में वह दर्द, टीस, विभाजन की विभीषिका, वह खौफनाक मंजर पूरी संजीदगी से मौजूद है। उनकी कहानियाँ न सिर्फ भावनात्मक स्तर पर गहरी संवेदना लिए हुए है बल्कि विभाजन के विभिन्न राजनैतिक और सामाजिक पहलुओं को भी समेटे हुए है।

मूल शब्दः विभाजन, त्रासदी, सरहद, विस्थापन, बँटवारा, सांप्रदायिकता, दंगे, स्मृतियां

मूल आलेख

हिंदुस्तान के इतिहास में विभाजन एक ऐसा फैसला रहा है जिसने इस देश की राजनीति और समाज व्यवस्था को समान रूप से प्रभावित किया है। यह एक ऐसा दुर्भाग्यपूर्ण निर्णय था जिसके दंश से आज भी यह देश उबरा नहीं है। आज की पीढ़ी जिन्होंने विभाजन की विभीषिका नहीं देखी, विस्थापन के दर्द को नहीं सहा है उनके लिए यह बँटवारा पिछली सदी के इतिहास का एक हिस्सा भर है, परंतु इतिहास के इस हिस्से में उन लाखों लोगों की चीखें, उनका दर्द इस कदर मौजूद है जिसे चाह कर भी हम अनदेखा नहीं कर सकते। इतिहास और सांस्कृतिक क्षेत्र की इतनी बड़ी घटना जिससे इतने व्यापक फ़लक पर लोग प्रभावित हुए उसने स्वाभाविक तौर पर साहित्य–लेखन को भी प्रभावित किया। इनमें से बहुतेरे लेखकों ने विभाजन की इस त्रासदी को प्रत्यक्ष रूप में भोगा है। फलतः इनकी कहानियों में मानवीय भावनाओं की तीव्र अनुभूति देखने को मिलती है। गुलज़ार एक ऐसे ही लेखक हैं जिनके लिए विभाजन, इतिहास की घटना होते हुए भी उनके अवचेतन में एक जीवित संदर्भ की तरह मौजूद है। उनकी कहानियों में विभाजन का दंश किस कदर पसरा हुआ है वह उनकी कहानी संग्रह "रावी पार" की भूमिका से समझा जा सकता है– "कुछ अफसाने यूं हुए कि फोड़ों की तरह निकले। वह हालात, माहौल और सोसाइटी के दिये हुए थे। कभी नज़्म कहके खून थूक लिया और कभी अफसाना लिख कर जख्म पर पट्टी बांध ली।"[1] विभाजन के संदर्भ में उन्होंने जो कहानियाँ लिखी हैं, वे लेखकीय बोध के स्तर पर कई संवेदनशील पहलुओं को उठाती हैं। उनकी कहानियाँ न सिर्फ विभाजन के दौरान की घटनाओं को बयान करती हैं बल्कि विभाजन के फलस्वरूप देश की सामाजिक संरचना, लोगों के मनोविज्ञान, उनके डर आदि की भी पड़ताल करती हैं। विभाजन की विभीषिका को उस समय लाखों लोगों ने सहा। विभाजन और दंगों को लेकर उन सबके अपने अनुभव रहे हैं। अतः स्वाभाविक है कि उनके पास इस घटना से जुड़ी अनेक कहानियाँ होंगी। परंतु एक लेखक का वर्णन उन कहानियों से इस मायने में भिन्न होता है कि आम लोगों की कहानियाँ जहाँ वर्णन प्रधान और एकपक्षीय होती हैं, वहीं एक लेखक इसे कई आयामों से उद्घाटित करता है। उनकी कहानियाँ घटना प्रधान होती हैं, वे न सिर्फ उस दौर के दृश्य का आँखों देखा वर्णन करते हैं बल्कि उससे जुड़े विविध मानवीय एवं सामाजिक पहलुओं को भी उद्घाटित करते हैं। इस प्रकार उनकी कहानियाँ सिर्फ उनके व्यक्तिगत अनुभव अथवा दुख को अभिव्यक्त नहीं करती बल्कि समाज के एक बड़े हिस्से का प्रतिनिधित्व भी करती हैं। गुलजार की कहानियाँ– खौफ, धुआँ, रावी पार, बँटवारा, जामुन का पेड़, दो लोग, एल ओ सी, दुम्बे आदि कहानियाँ विभाजन के इसी दर्द को बयान करती हैं। अशोक भौमिक लिखते हैं–"सरहद की इस काली लकीर पर, अपनी नज़्मों, कहानियों और अपने सपनों में, पूरी शिद्दत के साथ अगर दोनों मुल्कों में किसी एक रचनाकार ने अपनी उंगली रखी है, तो वे गुलज़ार ही हैं।"[2]

बतौर कहानीकार, गुलज़ार ने विभाजन के दर्द को अपनी कहानियों में जिया है। दूरदर्शन पर a journey of thoughts - with Gulzar में साक्षात्कार के दौरान गुलज़ार कहते हैं– "पार्टिशन देखा है मैंने! वो दंगे भी देखे हैं, सड़क पर बहता हुआ खून भी देखा है और उसे वहीं पे जम के काला होते हुए भी देखा है, अधजली लाशों को चिपके हुए देखा है जिनको खुरचकर निकाल के ट्रकों में भरा गया था। मैंने वह बड़ा हैरतनाक मंजर था, जो देखा है। करीब 20–25 साल तक वह नाइटमेयर्स आते थे जिससे मैं डर कर जाग जाया करता था और इस खौफ से दोबारा सोता नहीं था कि ये ख्वाब फिर आएगा। उसको पर्च आउट करने का भी ये एक तरीका था। वो कहीं न कहीं तो निकलना है आपके सिस्टम से, तो वो राइटिंग में आया। उस पर नज़्में भी बहुत कहीं, उसपे अफसाने भी बहुत कहे।"[3] जिन्होंने विभाजन को देखा और सहा है उनके लिए आज भी विभाजन किसी खौफ़नाक हादसे से कम नहीं है। यह उनके लिए एक ऐसा दुःस्वप्न है जो ताउम्र उनका पीछा करती रही है। "ख़राशें" की भूमिका में गुलज़ार स्वयं इस बात को स्वीकारते हुए कहते हैं– "1947 में इतनी लाशें गिरती देखीं और इतने फसादात भड़कते देखे कि उनकी छाप अब तक आँखों से उतरी नहीं। आसमान पर उड़ती चीलें भी देखूँ तो गिद्ध लगती हैं– कहीं कोई सफा खुल जाता है, कोई बेकफन लाश नजर आ जाती है–कोई बेकफन दिन जो अब तक दफनाया नहीं गया।"[4]

सन् 1947 का भारत विभाजन, दोनों मुल्कों की एक बड़ी आबादी के लिए आज भी दुःस्वप्न बन कर उनकी स्मृतियों में जिंदा है। दो मुल्कों के इस राजनैतिक विभाजन पर तमाम बुद्धिजीवियों, इतिहासकारों ने अपनी राय रखी है, पर इस विभाजन में सांप्रदायिक दंगों से प्रभावित उन लाखों लोगों की राय जानने की वैसी कोशिश नहीं की गयी, जिन्होंने धार्मिक उन्माद के शिकार

होकर दंगों में अपने परिजनों को खो दिया। ये वे लोग थे जिन पर विभाजन का फैसला जबरदस्ती थोप दिया गया था। फलस्वरूप एक बड़ी आबादी न चाहते हुए भी पलायन को मजबूर, शरणार्थियों का जीवन जीने के लिए विवश थी। यह भयावहता उनके जीवन के हर क्षेत्र में व्याप्त थी। उनकी सबसे पहली और मुख्य समस्या थी– रोजगार की। भीषण दंगे और विस्थापन ने उनकी आजीविका के सभी साधन छीन लिए थे। परिणामस्वरूप आजादी के समय भारत की आर्थिक एवं सामाजिक दशा अत्यंत दयनीय हो गयी थी। गुलजार की कहानियाँ इस संकट से उपजे जीवन–निर्वाह की समस्याओं को स्वर प्रदान करती हैं। एक कहानीकार के तौर पर गुलज़ार राजनैतिक रूप से कितने परिपक्व हैं यह उनकी कहानियों को देखने से पता चलता है। वे अपनी कहानियों में विभाजन के दौरान केवल उपजने वाली हिंसा और नफ़रतों का ही वर्णन नहीं करते, बल्कि उन हिंसा के असली कारणों की पड़ताल करते हुए उसकी सामाजिक संरचना पर पड़ने वाले आर्थिक, धार्मिक एवं राजनैतिक प्रभावों को भी दिखलाते हैं। आजादी और विभाजन के इतने साल बाद आज भी सत्ता, सरहद और जनमानस में विभाजन, एक जीवित संदर्भ की तरह मौजूद है। यही वजह है कि बँटवारे के कारण दोनों देशों की आर्थिक, राजनैतिक और सैन्य–शक्ति काफी कमजोर हो गयी थी, उनके आपसी संबंध प्रगाढ़ होने के बजाय लगातार तल्ख़ ही बने रहे हैं। समय–समय पर दोनों देशों के बीच हुए भीषण युद्ध ने उनकी अर्थव्यवस्था को गहराई से प्रभावित किया है। इस प्रकार ब्रिटेन ने जिस कूटनीति के तहत दोनों देशों का विभाजन किया था उनकी दृष्टि में वह समय–समय पर सफल होती रही है। इधर आम आदमी की रोज़मर्रा की जिंदगी में खुशहाली लाने में पूरी तरह से नाकाम, दोनों मुल्कों के सत्ताधारियों के पास समय–समय पर अंधराष्ट्रवाद और देश–प्रेम के नाम पर युद्ध के सिलसिले को जिंदा रखने की सोची समझी चाल पर गुलज़ार अपनी कहानियों के माध्यम से सवाल खड़ा करते हैं। उन्हें मालूम है कि राजनैतिक हितों को साधने के लिए सरहद पर करवाए जाने वाले युद्ध हो अथवा देश के भीतर दंगे; दोनों में अंततः आम नागरिक को ही नुकसान उठाना पड़ता है। सरहद पर लड़ने वाले सैनिक भी इसी वर्ग से आते हैं। गुलजार की कहानियों में उन फ़ौजियों की मजबूरी का जिक्र है, जो बेवजह अपने नेताओं के राजनैतिक स्वार्थों को पूरा करने में, एक दूसरे के दुश्मन बन अपने–अपने मुल्कों की सरहदों की हिफाजत कर रहे हैं, जिनके घरों में उनके खेतों की हिफाजत करने वाला कोई नहीं है। "ओवर" कहानी में बुझारत सिंह जो एक चौकी पर तैनात एक फौजी है, अपनी आर्थिक बदहाली और उसके मुल्क की तरक्की की निशानी के रूप में परमाणु बम बना लेने के बीच की विसंगति को समझते हुए कहता है– "सरकार ने परमाणु बम बना लिए। हमारे लिए क्या किया? माचिस भी एक रुपए की हो गयी!"[5] दरअसल आम मध्यमवर्गीय जीवन की समस्याओं का समाधान परमाणु बम नहीं कर सकता बल्कि उनकी मूलभूत जरूरतें रोटी, दाल जैसी रोज़मर्रा की वस्तुओं से पूरी होती है। "ओवर" कहानी में ही फौजी गोपी कहता है–"अपने भी एक लाइटर होता तो ज़िंदगी में क्या मजा होता। अब परमाणु बम से बीड़ी तो नहीं सुलगा सकते न।"[6] सरहद पर बैठे इन सैनिकों की ये छोटी–छोटी समस्याएँ आम मध्यमवर्गीय जीवन की समस्याओं का प्रतिनिधित्व करती हैं। भौगोलिक स्तर पर हुए विभाजन ने लोगों की आस्था और संवेदनाओं पर भी गहरा आघात किया था। "कुलदीप नैयर और पीर साहब" एक ऐसी ही कहानी है जो संस्मरण के तर्ज़ पर कही गयी है। इस कहानी में यह दिखाया गया है कि आमजन में इन स्थानीय प्रतीकों की कितनी गहरी पैठ होती है। मुल्क और घर भले बदल जाये पर उन पवित्र स्थलों से उनका जुड़ाव रत्ती भर भी कम नहीं होता। कुलदीप नैयर साहब की माँ के लिए पीपल के वृक्ष के पास 'पीर साहब' की कब्र ऐसे ही आस्था का एक विषय था। नैयर साहब सियालकोट (पाकिस्तान) में स्थित उस कब्र के बारे में बताते हैं– "इस अहाते के एक तरफ, बहुत घना पीपल का पेड़ था। जो हमारे घर के ज्यादा करीब था। उसके नीचे एक कब्र थी। पता नहीं किसकी थी, लेकिन माँ ने कह–कह के उसे 'पीर साहब' की कब्र बना दिया। माँ पीपल पर पूजा का सिंदूर लगातीं और साथ ही उस कब्र पर एक दीया रख देती थी। सिंदूर पीपल पर लगा के, उंगली कब्र की ईंट से पोंछ लेतीं। इम्तिहान हों, त्यौहार हो, खुशी हो, गम हो, कोई फ़ाह, कोई अफड़....हर बात में पीर साहब जरूर शामिल होते।"[7] विभाजन के बाद नैयर साहब और उनकी माँ भारत आ गए और पीर साहब वहीं सियालकोट में ही छूट गए। सन् 1975 ई. में इमरजेंसी के दौरान पीर साहब कुलदीप नैयर के सपने में आए और उनसे एक चादर की मांग की। यह बात जब उन्होंने अपनी माँ को बताई तो माँ ने कहा– "बेटा, स्यालकोट जाकर, उनकी कब्र पर चादर जरूर चढ़ा देना। और माँ की आँखें भीगी हुई थीं।"[8] विस्थापन के करीब तीस साल बीत जाने के बाद भी नैयर साहब की माँ के लिए पीर बाबा की कब्र के प्रति वही आस्था आज तक जीवित थी जिसे वो बरसों पुराने पाकिस्तान में ही छोड़ आयीं थी। बाद के दिनों में जब नैयर साहब स्यालकोट गए तो पीर साहब की उस कब्र की जगह अब दुकानें लगी हुई थीं। नैयर साहब के लिए यह दोहरी त्रासदी थी। अंत में नैयर साहब उस चादर को निज़ामुद्दीन औलिया की दरगाह पर चढ़ा आते हैं। इस प्रकार विभाजन के फलस्वरूप लोगों की आस्था, विश्वास और संवेदनाओं का किन–किन स्तरों पर खून हुआ वह 'पीर साहब की कब्र' के माध्यम से समझा जा सकता है।

विभाजन के परिणामस्वरूप इंसानी रिश्तों में जो परिवर्तन और मूल्यों में जो विघटन हुआ उसे गुलजार की कहानियों की एक खास प्रवृत्ति और रुझान के तौर पर देखा जा सकता है। पारस्परिक सम्बन्धों में आए बिखराव और उस वजह से लोगों के टूटते हुए सपनों को गुलज़ार ने अपनी कहानियों में पूरी शिद्दत के साथ महसूस किया है। उनकी कहानी 'बँटवारा' विभाजन के इसी दर्द की मार्मिक अभिव्यक्ति है। यह कहानी खुद गुलज़ार से जुड़ी हुई है। यह एक बूढ़े माँ–बाप की सच्ची कहानी है जिन्होंने बँटवारे के दौरान सरहद पार करते समय अपने एक बेटे और बेटी को खो दिया था। करीब 30–35 साल बाद ये माँ–बाप, गुलज़ार को अपना खोया हुआ बेटा मान कर उन्हें वापस घर आने को कहते हैं। गुलज़ार का असली नाम संपूरण सिंह कालरा है और संयोग से तक़सीम में खोये हुए उस बच्चे का नाम भी संपूरण सिंह ही था। लेखक और उस बच्चे की पृष्ठभूमि भी लगभग एक ही जैसी थी। (दोनों की पैदाइश पाकिस्तान की थी।) अतः उन बूढ़े माँ–बाप को पूरा यकीन हो चला था कि गुलज़ार ही उनका खोया हुआ बेटा है। उनका बड़ा बेटा इकबाल सिंह एक बड़े भाई साहब की हैसियत से लेखक को बार–बार खत लिख कर घर वापस आने का आग्रह करते हैं। गुलज़ार साहब खत का जवाब देते हुए उन्हें यकीन दिलाने की कोशिश करते हैं कि वो उनके छोटे भाई नहीं है और वह बँटवारे के वक़्त हिंदुस्तान में थे और अपने पिताजी के साथ ही थे। परंतु इकबाल सिंह की कोशिश खत्म नहीं होती है। वे गुलज़ार के अन्य साथियों की मदद से गुलज़ार को एक बार घर आकर अपने वृद्ध माँ–बाप से मिलने के लिए राजी कर लेते हैं। इकबाल सिंह के पिता हरभजन सिंह गुलज़ार से मिलते हैं और उन्हें विभाजन के दौरान की घटना का जिक्र करते हुए बताते हैं कि कैसे वे लोग हिंदुस्तान पलायन करने के क्रम में अपने दो बच्चों से बिछड़ गए। करीब तीस साल बाद उन्हें अपनी खोयी हुई बेटी वापस पाकिस्तान में ही मिल गयी थी। अतः उन्हें पूरा विश्वास था कि बेटी की तरह गुलज़ार के रूप में उनका खोया हुआ बेटा भी मिल गया है। पूरे बातचीत के दौरान हरभजन सिंह की पत्नी बार–बार गुलज़ार से विनती करती है कि वह ये मान ले कि वो उनका वही खोया हुआ बेटा है। गुलज़ार अपने बारे में सारी जानकरी देते हुए उन्हें एक बार फिर निराश कर वापस लौट आते हैं। इस घटना के करीब आठ साल बीतने के बाद इकबाल

सिंह का एक खत आता है जिसमें हरभजन सिंह के इंतकाल की खबर होती है। खत में लिखा होता है– "माँ ने कहलवाया है कि छोटे को जरूर खबर देना।"[9] गुलज़ार को ऐसा लगता है जैसे कि सचमुच उनके दारजी गुज़र गए हों।

इस कहानी में बूढ़े हरभजन सिंह और उनकी पत्नी की मनोदशा ऐसी है कि इतने साल बीत जाने के बाद भी अपने खोये हुए बच्चे के प्रति उनका ममत्व कम नहीं हुआ है। गुलज़ार द्वारा यह बताने के बावजूद कि वह उनका बेटा नहीं है, वे यह मानने को तैयार नहीं होते हैं या भीतर से मान लेने के बावजूद वे बाहर से इसे स्वीकार करने की हिम्मत नहीं जुटा पाते हैं। एक भरे–पूरे परिवार में रहने के बावजूद भी ये वृद्ध दंपति सिर्फ नाम और पृष्ठभूमि में साम्य होने के कारण गुलज़ार के लाख मना करने के बावजूद गुलज़ार में अपने उस खोये हुए बेटे की छवि देखते हैं और अब उनके बिना अपने परिवार में उन्हें एक अपूर्णता का एहसास होता है। माँ कहती है– "काका तू जहां मर्जी है रह! तू मुसलमान हो गया है तो कोई बात नहीं पर मान तो ले तू ही मेरा बेटा है, पुन्नी।"[10] वो किसी भी तरह से खुद को यह यकीन दिलाना चाहती है कि उनका बिछड़ा हुआ बेटा आज भी सही सलामत उनकी आँखों के सामने खड़ा है। वर्षों से अपने खोये हुए बच्चों के प्रति भीतर ही भीतर जो उनका दर्द पल रहा था वह गुलज़ार के आने से निकल पड़ा। इसलिए माँ बार–बार विनती करती है– "पुन्नी (सम्पूरण) तू मान क्यूँ नहीं जाता। क्यूँ छुपाता है हमसे! अपना नाम भी छुपा रखा है तूने। जैसे सत्या दिलशाद हो गयी, तुझे भी किसी ने गुलज़ार बना दिया होगा।"[11] यह कहानी बतलाती है कि विभाजन कोई क्षणिक घटना नहीं थी बल्कि उसका असर सालों साल रहा और जिन्होंने इस घटना को झेला है वे ताउम्र इस दर्द को अलग–अलग रूपों में सहते रहे हैं।

गुलजार की कहानी "जामुन का पेड़" विभाजन के दौरान की सर्वश्रेष्ठ कहानियों में से एक है। इस कहानी में विभाजन से पूर्व और उसके बाद के हालातों का वर्णन है। कहानी में यह दिखाया गया है कि किस प्रकार विभाजन की एक घटना ने सामाजिक हालातों में इतना बड़ा परिवर्तन ला दिया। सदियों से जो हिन्दू–मुस्लिम कौम परस्पर एक ही सामाजिक संरचना में साझी संस्कृति विकसित कर रहे थे अचानक से विभाजन के इस फैसले ने उस संस्कृति को छिन्न–भिन्न कर दिया। कहानी के पहले हिस्से में जामुन के पेड़ के इर्द–गिर्द सरस इंसानी रिश्तों की गर्माहट है, वहीं कहानी के दूसरे हिस्से में हैवानियत की आग में उजाड़ होता एक समाज है। इन सबके समानान्तर कहानी में एक विशाल जामुन के पेड़ का एक 'असहाय भारत' के प्रतीक में बदल जाने की कथा भी है।

कहानी के पहले हिस्से में जामुन के पेड़ के इर्द गिर्द सरदार सोहन सिंह, मिर्जाजी, जयचंद, दीनू आदि सभी कौम के लोग एक साथ बैठकर आपस में अपने सुख–दुख, अपने विचार आदि साझा करते हैं। वहीं जार्ज, नूरा, अहमद, शिब्बू, निक्का आदि बच्चे भी उसी पेड़ की छांव में दिन भर खेलते हैं। इस प्रकार जामुन के पेड़ के नीचे गर्मजोशी, भाईचारे और सौहार्द का जीवंत माहौल देखने को मिलता है। जामुन का वह पेड़ उस इलाके की सारी ज़िंदगी का केंद्र बना हुआ है। इस अर्थ में जामुन का पेड़ 'विभाजन से पूर्व के भारत' का प्रतीक बन जाता है जिसकी गोद में विभिन्न धर्म, संप्रदाय के लोग परस्पर एकजुटता की भावना से अपना जीवन–यापन करते हैं जहां आपसी सहसंबंधों का एक मीठा और प्रगाढ़ रिश्ता जामुन के पेड़ के नीचे पनपता हुआ दिखाई देता है। परंतु विभाजन के बाद परिस्थितियाँ ठीक उलट गयीं। कहानी के दूसरे हिस्से में जामुन का पेड़ जो अब तक परस्पर सहजीविता की भावना को पाल–पोस रहा था, सांप्रदायिक आग की चपेट से खुद को बचा न सका। जिस मिर्जाजी और सोहन सिंह के हाथों में पहले पेड़ के छांव के नीचे शतरंज की मोहरें हुआ करती थी अब उसी हाथों में तलवार आ गयी थी। समाज अब दो भिन्न समुदायों में बंट चुका था। लोग एक दूसरे के खून के प्यासे हो गए थे। और इस प्रकार जामुन का पेड़ एक 'असहाय और खंडित भारत' में तब्दील हो जाता है जिसे अपने ही मुल्क के लोगों ने कौम के नाम पर सांप्रदायिक उन्माद में दो भागों में बाँट दिया– "जामुन की एक टहनी पर मुस्लिम लीगी झण्डा लग गया और दूसरी पर तिरंगा और दोनों झंडे इस जोर के साथ टकराये कि टहनियों समेत नीचे आ पड़े। वफादार बाप के दोनों हाथ कट गये। फिर बेटों ने पागलों की तरह एक दूसरे के सीने में अपने नाखून गाड़ दिये। खून की धारें उछल–उछल कर बाप के मुंह पर पड़ती रहीं।"[12]

गुलज़ार ने चूंकि स्वयं विभाजन के दंश को झेला है और उसे सहा है इसलिए विभाजन की विभीषिका को चित्रित करती हुई उनकी कहानियों में अनुभूति की प्रामाणिकता होती है। ऐसा लगता है कि वे स्वयं उस घटनास्थल पर मौजूद हों और उनका आँखों देखा वर्णन कर रहे हों। कहानी की अंतिम पंक्ति "लाशें जलती गईं और जामुन की टहनियाँ कटती गयीं।"[13] विभाजन के दौरान और उसके बाद के भारत की असली सामाजिक और राजनैतिक तस्वीर पेश करती है।

इस प्रकार गुलज़ार की कहानियों को समग्रता से देखने पर यह बात पूरी तरह स्पष्ट हो जाती है कि उनकी कहानियाँ न सिर्फ विभाजन की त्रासदी को संजीदगी से महसूस कराती हैं बल्कि विभाजन की त्रासदी के कारणों की भी पड़ताल करती हैं। उनकी कहानियों में वह दर्द, टीस, विभाजन की विभीषिका, वह खौफनाक मंजर पूरी संजीदगी से मौजूद है जिसे न सिर्फ उन्होंने बल्कि लाखों लोगों ने झेला है। उनकी कहानियाँ न सिर्फ भावनात्मक स्तर पर गहरी संवेदना लिए हुए है बल्कि विभाजन के विभिन्न राजनैतिक और सामाजिक पहलुओं को भी समेटे हुए है। उनकी कहानियों में मूल्य–बोध बहुत गहरे स्तर पर है। विभाजन के दौरान इन मूल्यों पर जो खतरा उत्पन्न हो गया था गुलज़ार उसे अपनी कहानियों में चिन्हित करते हैं। इस प्रकार ये कहानियाँ भारत विभाजन की अंतःकथा कथा कहती हुई विभाजन के सामाजिक और राजनैतिक त्रासदियों की ओर इशारा करती हैं तथा सांप्रदायिक शक्तियों से भविष्य में होने वाले खतरों की ओर संकेत करती हैं। साथ ही उनकी कहानियाँ इतिहास के उन काले अध्याय से सबक लेते हुए मनुष्यता की ओर लौट आने का भी आह्वान करती हैं।

संदर्भ सूचि

1. गुलज़ार, रावी पार, रूपा प्रकाशन, नई दिल्ली, (भूमिका)
2. भौमिक, अशोक, ज़ीरो लाइन पर गुलज़ार, हार्पर कॉलिन्स प्रकाशन, 2015 ई., पृ. 19
3. https://www.youtube.com/watch?v=8-9hxiLD18kA Journey of thoughts with Gulzar
4. गुलज़ार, ख़राशें, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014 ई., (भूमिका)
5. गुलज़ार, ड्योढ़ी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2010 ई., पृ. 79
6. गुलज़ार, ड्योढ़ी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2010 ई., पृ. 79
7. गुलज़ार, ड्योढ़ी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2010 ई., पृ. 20
8. गुलज़ार, ड्योढ़ी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2010 ई., पृ.23
9. गुलज़ार, रावी पार, रूपा प्रकाशन, नई दिल्ली, 1999 ई., पृ. 61
10. गुलज़ार, रावी पार, रूपा प्रकाशन, नई दिल्ली, 1999 ई., पृ. 60
11. गुलज़ार, रावी पार, रूपा प्रकाशन, नई दिल्ली, 1999 ई., पृ. 60
12. गुलज़ार, जीना यहाँ, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2010, पृ. 58
13. गुलज़ार, जीना यहाँ, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2010, पृ. 59